

## Chapter आठ

### गर्भोदकशायी विष्णु से ब्रह्मा का प्राकट्य

मैत्रेय उवाच  
 सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो  
 यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ।  
 बभूविथेहाजितकीर्तिमालां  
 पदे पदे नूतनयस्यभीक्षणम् ॥ १ ॥

#### शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—श्रीमैत्रेय मुनि ने कहा; सत्-सेवनीयः—शुद्ध भक्तों की सेवा करने का पात्र; बत—ओह, निश्चय ही; पूरु-वंशः—राजा पूरु का वंश; यत्—क्योंकि; लोक-पालः—राजा हैं; भगवत्-प्रधानः—भगवान् के प्रति मुख्य रूप से अनुरक्त; बभूविथ—तुम भी उत्पन्न थे; इह—इसमें; अजित—अजेय भगवान्; कीर्ति-मालाम्—दिव्य कार्यों की शृंखला; पदे पदे—प्रत्येक पग पर; नूतनयसि—नवीन से नवीनतर बनते हो; अभीक्षणम्—सदैव।

महा-मुनि मैत्रेय ने विदुर से कहा : राजा पूरु का राजवंश शुद्ध भक्तों की सेवा करने के लिए योग्य है, क्योंकि उस वंश के सारे उत्तराधिकारी भगवान् के प्रति अनुरक्त हैं। तुम भी उसी कुल में उत्पन्न हो और यह आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे प्रयास से भगवान् की दिव्य लीलाएँ प्रतिक्षण नूतन से नूतनतर होती जा रही हैं।

तात्पर्य : महा-मुनि मैत्रेय ने विदुर को धन्यवाद दिया और उनके वंश की ख्याति का सन्दर्भ देते हुए उनकी प्रशंसा की। पूरुवंश भगवद्भक्तों से भरापूरा था और इसके कारण महिमामंडित था। चूँकि वे लोग निर्विशेष ब्रह्म या अन्तर्यामी परमात्मा के प्रति अनुरक्त न होकर सीधे भगवान् अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम से जुड़े थे, अतएव वे भगवान् एवं उनके शुद्ध भक्तों की सेवा करने के योग्य थे। क्योंकि विदुर उसी वंश के वंशज थे, अतः स्वाभाविक था कि वे भगवान् के नित नूतन यश का दूर दूर तक विस्तार करने में लग गये। विदुर जैसे व्यक्ति की महिमामंडित संगति पाकर मैत्रेय आनन्दित थे। उन्होंने विदुर की संगति को अतीव वांछनीय माना, क्योंकि ऐसी संगति से मनुष्य की भक्तिमय सेवा की सुसुप्त प्रवृत्तियाँ त्वरायुक्त हो जाती हैं।

सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं  
 महद्गतानां विरमाय तस्य ।  
 प्रवर्तये भागवतं पुराणं

यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; अहम्—मैं; नृणाम्—मनुष्यों के; क्षुल्ल—अत्यल्प; सुखाय—सुख के लिए; दुःखम्—दुख; महत्—भारी; गतानाम्—को प्राप्त; विरमाय—शमन हेतु; तस्य—उसका; प्रवर्तये—प्रारम्भ में; भागवतम्—श्रीमद्भागवत; पुराणम्—पुराण में; यत्—जो; आह—कहा; साक्षात्—प्रत्यक्ष; भगवान्—भगवान् ने; ऋषिभ्यः—ऋषियों से।

अब मैं भागवत पुराण से प्रारम्भ करता हूँ जिसे भगवान् ने प्रत्यक्ष रूप से महान् ऋषियों से उन लोगों के लाभार्थ कहा था, जो अत्यल्प आनन्द के लिए अत्यधिक कष्ट में फँसे हुए हैं।

तात्पर्य : मैत्रेय मुनि ने श्रीमद्भागवत के विषय में बोलने का प्रस्ताव रखा, क्योंकि इसकी रचना विशेष रूप से मानव समाज की समस्त समस्याओं के समाधान के लिए की गई थी और यह शिष्य-परम्परा से रूढ़िगत चली आ रही है। जो भाग्यशाली है, केवल वही भगवान् के शुद्ध भक्तों की संगति में श्रीमद्भागवत सुनने का सुअवसर प्राप्त कर सकता है। भौतिक शक्ति के जादू के अधीन सारे जीव स्वल्प भौतिक सुख के निमित्त ही अनेक कठिनाइयों के बन्धन में फँसे हुए हैं। वे सकाम कर्मों की उलझनों को न जानते हुए उनमें लगे रहते हैं। वे इस मिथ्या भाव के कारण कि शरीर आत्मा है, अनेकानेक मिथ्या आसक्तियों से अपने को सम्बद्ध करते हैं। वे सोचते हैं कि वे भौतिकतावादी साज-सामग्री से सदा जुड़े हुए रह सकेंगे। जीवन की यह मिथ्या भ्रान्ति इतनी प्रबल होती है कि मनुष्य भगवान् की बहिरंगा शक्ति के अधीन जन्म-जन्मांतर कष्ट उठाता रहता है। यदि वह 'भागवत' ग्रन्थ तथा भागवत जानने वाले भक्त भागवत इन दोनों के सम्पर्क में आता है, तो ऐसा भाग्यशाली व्यक्ति भौतिक पाश से छूट जाता है। अतएव संसार के दुखी लोगों के प्रति दया के कारण श्रीमैत्रेय मुनि पहले श्रीमद्भागवत के विषय में बोलने का प्रस्ताव रख रहे हैं।

आसीनमुर्व्या भगवन्तमाद्यं

सङ्कर्षणं देवमकुण्ठसत्त्वम् ।

विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य

कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

आसीनम्—विराजमान; उर्व्याम्—ब्रह्माण्ड की तली पर; भगवन्तम्—भगवान् को; आद्यम्—आदि; सङ्कर्षणम्—संकर्षण को; देवम्—भगवान्; अकुण्ठ-सत्त्वम्—अबाध ज्ञान; विवित्सवः—जानने के लिए उत्सुक; तत्त्वम् अतः—इस प्रकार का सत्य; परस्य—भगवान् के विषय में; कुमार—बाल सन्त; मुख्याः—इत्यादि, प्रमुख; मुनयः—मुनियों ने; अन्वपृच्छन्—इसी तरह से पूछा।

कुछ काल पूर्व तुम्हारी ही तरह कुमार सन्तों में प्रमुख सन्त कुमार ने अन्य महर्षियों के साथ

जिज्ञासावश ब्रह्माण्ड की तली में स्थित भगवान् संकर्षण से भगवान् वासुदेव विषयक सत्त्यों के बारे में पूछा था।

तात्पर्य : यह इस कथन का स्पष्टीकरण है कि भगवान् ने प्रत्यक्ष रूप से श्रीमद्भागवत के विषय में कहा। यहाँ पर बताया गया है कि कब और किससे भागवत कही गई। विदुर द्वारा पूछे गये प्रश्नों के ही समान प्रश्न सनत्कुमार जैसे महामुनियों ने पूछे थे और भगवान् वासुदेव के स्वांश भगवान् संकर्षण ने उनके उत्तर दिये थे।

स्वमेव धिष्यं बहु मानयन्तं  
यद्वासुदेवाभिधमामनन्ति ।  
प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीषद्  
उन्मीलयन्तं विबुधोदयाय ॥ ४ ॥

#### शब्दार्थ

स्वम्—स्वयं; एव—इस प्रकार; धिष्यम्—स्थित; बहु—अत्यधिक; मानयन्तम्—माननीय; यत्—जो; वासुदेव—भगवान् वासुदेव; अभिधम्—नामक; आमनन्ति—स्वीकार करते हैं; प्रत्यक्-धृत-अक्ष—भीतर झाँकने के लिए टिकी आँखें; अम्बुज-कोशम्—कमल सदृश नेत्र; ईषत्—कुछ-कुछ; उन्मीलयन्तम्—खुली हुई; विबुध—अत्यन्त विद्वान ऋषियों की; उदयाय—प्रगति के लिए।

उस समय भगवान् संकर्षण अपने परमेश्वर का ध्यान कर रहे थे जिन्हें विद्वज्जन भगवान् वासुदेव के रूप में सम्मान देते हैं। किन्तु महान् पंडित मुनियों की उन्नति के लिए उन्होंने अपने कमलवत् नेत्रों को कुछ-कुछ खोला और बोलना शुरू किया।

स्वर्धुन्युदाद्रैः स्वजटाकलापै-  
रुपस्पृशन्तश्चरणोपधानम् ।  
पद्मं यदर्चन्त्यहिराजकन्याः  
सप्रेम नानाबलिभिर्वरार्थाः ॥ ५ ॥

#### शब्दार्थ

स्वर्धुनी—उद—गंगा के जल से; आद्रैः—भीगे हुए; स्व-जटा—बालों का गुच्छा; कलापैः—सिर पर स्थित; उपस्पृशन्तः—इस तरह छूने से; चरण-उपधानम्—उनके चरणों की शरण; पद्मम्—कमल चरण; यत्—जो; अर्चन्ति—पूजा करते हैं; अहि-राज—सर्पों का राजा; कन्याः—पुत्रियाँ; स-प्रेम—अतीव भक्ति समेत; नाना—विविध; बलिभिः—साज-सामग्री द्वारा; वर-अर्थाः—पतियों की इच्छा से।

चूँकि मुनिगण गंगानदी के माध्यम से उच्चतर लोकों से निम्नतर भाग में आये थे, फलस्वरूप उनके सिर के बाल भीगे हुए थे। उन्होंने भगवान् के उन चरणकमलों का स्पर्श किया जिनकी पूजा नागराज की कन्याओं द्वारा अच्छे पति की कामना से विविध सामग्री द्वारा की

जाती है।

**तात्पर्य :** गंगा का जल सीधे विष्णु के चरणकमलों से प्रवाहित होता है और उसका मार्ग ब्रह्माण्ड के उच्चतम लोक से लेकर निम्नतम लोक तक जाता है। मुनिगण प्रवाहित जल का लाभ उठाकर सत्यलोक से नीचे आये—परिवहन की यह विधि योग शक्ति से ही सम्भव हो सकी। यदि कोई नदी हजारों मील तक प्रवाहित होती है, तो पूर्णयोगी इसके जल में केवल डुबकी लगाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर तुरन्त पहुँच सकता है। गंगा ही एकमात्र ऐसी नदी है, जो समूचे ब्रह्माण्ड में प्रवाहित होती है और मुनिगण इस पवित्र नदी के माध्यम से ब्रह्माण्ड भर में यात्रा करते हैं। यह कथन कि उनके बाल गीले थे यह सूचित करता है कि विष्णु के चरणकमल से सीधे निकले जल (गंगा) से ही बाल गीले थे। जो भी व्यक्ति अपने सिर से गंगा जल का स्पर्श करता है, वह प्रत्यक्ष रूप से भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श करता है और सम्पूर्ण पापकृत्यों के फलों से मुक्त हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति गंगा में स्नान करने या समस्त पापों के धुल जाने के बाद फिर से पापकर्म करने से अपने को बचाता है, तो निश्चित रूप से उसका उद्धार हो जाता है। किन्तु यदि वह पुनः पापकर्म करने लगता है, तो उसका गंगा-स्नान हाथी के स्नान की तरह है, जो नदी में ठीक से नहाता है, किन्तु बाद में भूमि की धूल से अपने शरीर को धूसरित करके सारा किया कराया बिगाड़ देता है।

मुहुर्गृणन्तो वचसानुराग-

स्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः ।

किरीटसाहस्रमणिप्रवेक

प्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**

मुहुः—बार बार; गृणन्तः—गुणगान करते; वचसा—शब्दों से; अनुराग—अतीव स्नेह से; स्खलत्-पदेन—सम लय के साथ; अस्य—भगवान् के; कृतानि—कार्यकलाप; तत्-ज्ञाः—लीलाओं के जानने वाले; किरीट—मुकुट; साहस्र—हजारों; मणि-प्रवेक—मणियों के चमचमाते तेज; प्रद्योतित—उद्भासित; उद्दाम—उठे हुए; फणा—फन; सहस्रम्—हजारों।

सनत् कुमार आदि चारों कुमारों ने जो भगवान् की दिव्य लीलाओं के विषय में सब कुछ जानते थे, स्नेह तथा प्रेम से भरे चुने हुए शब्दों से लय सहित भगवान् का गुणगान किया। उस समय भगवान् संकर्षण अपने हजारों फनों को उठाये हुए अपने सिर की चमचमाती मणियों से तेज बिखेरने लगे।

**तात्पर्य :** भगवान् कभी-कभी *उत्तमश्लोक* कहलाते हैं, जिसका अर्थ है “जिसकी पूजा भक्तों द्वारा चुने शब्दों से की जाती हो।” जो भक्त भगवान् की भक्ति में स्नेह एवं प्रेम से पूर्णतया निमग्न रहता है उसके मुख से ऐसे चुने हुए शब्दों की झड़ी लग जाती है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें एक छोटे से बालक ने भी, जो भगवान् का महान् भक्त था, भगवान् की लीलाओं के गुणगान के लिए चुने हुए शब्दों में उत्तम स्तुति की। दूसरे शब्दों में, मधुर स्नेह तथा प्रेम उत्पन्न हुए बिना कोई भी व्यक्ति भगवान् की स्तुति उत्कृष्ट ढंग से नहीं कर सकता।

प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन

निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ।

सनत्कुमाराय स चाह पृष्ठः

साङ्ख्यायनायाङ्ग धृतव्रताय ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

प्रोक्तम्—कहा गया था; किल—निश्चय ही; एतत्—यह; भगवत्तमेन—भगवान् संकर्षण द्वारा; निवृत्ति—वैराग्य; धर्म-अभिरताय—इस धार्मिक व्रत को धारण करने वाले के लिए; तेन—उसके द्वारा; सनत्-कुमाराय—सनत् कुमार को; सः—उसने; च—भी; आह—कहा; पृष्ठः—पूछे जाने पर; साङ्ख्यायनाय—सांख्यायन नामक महर्षि को; अङ्ग—हे विदुर; धृत-व्रताय—व्रत धारण करने वाले को।

इस तरह भगवान् संकर्षण ने उन महर्षि सनत्कुमार से श्रीमद्भागवत का भावार्थ कहा जिन्होंने पहले से वैराग्य का व्रत ले रखा था। सनत्कुमार ने भी अपनी पारी में सांख्यायन मुनि द्वारा पूछे जाने पर श्रीमद्भागवत को उसी रूप में बतलाया जिस रूप में उन्होंने संकर्षण से सुना था।

**तात्पर्य :** परम्परा प्रणाली की यही विधि है। यद्यपि सुप्रसिद्ध सनत् कुमार जीवन की सिद्ध अवस्था में थे फिर भी उन्होंने भगवान् संकर्षण से श्रीमद्भागवत का सन्देश सुना। इसी तरह सांख्यायन ऋषि द्वारा पूछे जाने पर सनत्कुमार ने भगवान् संकर्षण से जो सन्देश सुना था उसे कह सुनाया। दूसरे शब्दों में, जब तक कोई उचित अधिकारी से नहीं सुन लेता, तब तक वह उपदेशक नहीं बन सकता। इसलिए भक्तियोग में नौ बातों में से दो बातें—श्रवण तथा कीर्तन—सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ठीक से सुने बिना कोई व्यक्ति वैदिक ज्ञान के सन्देश का प्रचार नहीं कर सकता।

साङ्ख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो

विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ।  
जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय  
पराशरायाथ बृहस्पतेश्च ॥ ८ ॥

**शब्दार्थ**

साङ्ख्यायनः—महर्षि सांख्यायन; पारमहंस्य-मुख्यः—समस्त अध्यात्मवादियों में प्रमुख; विवक्षमाणः—बाँचते समय; भगवत्-विभूतीः—भगवान् की महिमाएँ; जगाद—बतलाया; सः—उसने; अस्मत्—मेरे; गुरवे—गुरु को; अन्विताय—अनुसरण किया; पराशराय—पराशर मुनि के लिए; अथ बृहस्पतेः च—बृहस्पति को भी ।

सांख्यायन मुनि अध्यात्मवादियों में प्रमुख थे और जब वे श्रीमद्भागवत के शब्दों में भगवान् की महिमाओं का वर्णन कर रहे थे तो ऐसा हुआ कि मेरे गुरु पराशर तथा बृहस्पति दोनों ने उनको सुना ।

प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो  
मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ।  
सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स  
श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥ ९ ॥

**शब्दार्थ**

प्रोवाच—कहा; मह्यम्—मुझसे; सः—उसने; दयालुः—दयालु; उक्तः—उपर्युक्त; मुनिः—मुनि; पुलस्त्येन—पुलस्त्य मुनि से; पुराणम् आद्यम्—समस्त पुराणों में अग्रगण्य; सः अहम्—और वह भी मैं; तव—तुम से; एतत्—यह; कथयामि—कहता हूँ; वत्स—पुत्र; श्रद्धालवे—श्रद्धालु के लिए; नित्यम्—सदैव; अनुव्रताय—अनुयायी के लिए ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है महर्षि पराशर ने महर्षि पुलस्त्य के द्वारा कहे जाने पर मुझे अग्रगण्य पुराण ( भागवत ) सुनाया । हे पुत्र, जिस रूप में उसे मैंने सुना है उसी रूप में मैं तुम्हारे सम्मुख उसका वर्णन करूँगा, क्योंकि तुम सदा ही मेरे श्रद्धालु अनुयायी रहे हो ।

**तात्पर्य :** पुलस्त्य नामक महर्षि सारे असुरों के पिता हैं । एक बार पराशर ने यज्ञ करना प्राम्भ किया जिसमें सारे असुरों को जलाकर नष्ट किया जाना था, क्योंकि इन असुरों में से किसी एक ने उनके पिता का वध करके उसे निगल लिया था । महर्षि वशिष्ठ मुनि यज्ञ में पधारे और पराशर से अनुरोध किया कि इस घातक कृत्य को बन्द कर दें । मुनियों के समुदाय में वशिष्ठ के पद पर एवं प्रतिष्ठा के कारण पराशर उनके अनुरोध को टाल न सके, जब पराशर ने यज्ञ रोक दिया तो असुरों के पिता पुलस्त्य ने उनके ब्राह्मण स्वभाव की प्रशंसा की और यह आशीर्वाद दिया कि भविष्य में वे पुराणों के महान् वक्ता बनेंगे जो वेदों के पूरक ग्रंथ हैं । पराशर के कार्य की पुलस्त्य ने प्रशंसा की, क्योंकि पराशर ने क्षमा दान की अपनी ब्राह्मण शक्ति से असुरों को क्षमा कर दिया था । यज्ञ में पराशर सारे असुरों को नष्ट करने में

समर्थ थे, किन्तु उन्होंने विचार किया, “असुरों की उत्पत्ति ही इस तरह हुई है कि वे जीवित प्राणियों, मनुष्यों तथा पशुओं को निगल जाते हैं, लेकिन मैं इतने भर के लिए क्षमा के अपने ब्राह्मण-गुण को क्यों छोड़ दूँ?” पुराणों के महान् वक्ता पराशर ने सर्वप्रथम *श्रीमद्भागवत-पुराण* के विषय में बतलाया, क्योंकि यह समस्त पुराणों में अग्रगण्य है। मैत्रेय मुनि ने पराशर से सुने गये *भागवत* का ही वर्णन करने की इच्छा प्रकट की। विदुर इसको सुनने के पात्र थे, क्योंकि वे श्रद्धालु थे तथा अपने वरिष्ठजनों से प्राप्त उपदेशों का पालन करने वाले थे। इस तरह *श्रीमद्भागवत* अनादि काल से शिष्य-परम्परा द्वारा, व्यासदेव के समय के पहले से ही सुनाया जा रहा था। तथाकथित *इतिहास-वेत्ता* पुराणों को केवल कुछ सौ वर्ष प्राचीन बतलाते हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि पुराण अनादि काल से, संसारी लोगों तथा चिन्तनशील दार्शनिकों की समस्त ऐतिहासिक गणनाओं से बहुत पहले विद्यमान थे।

उदाप्लुतं विश्वमिदं तदासीद्  
यन्निद्रयामीलितदृड्यमीलयत् ।  
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः  
कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः ॥ १० ॥

#### शब्दार्थ

उद—जल में; आप्लुतम्—डूबे, निमग्न; विश्वम्—तीनों जगतों को; इदम्—इस; तदा—उस समय; आसीत्—यह इसी तरह था; यत्—जिसमें; निद्रया—नींद में; अमीलित—बन्द की; दृक्—आँखें; न्यमीलयत्—पूरी तरह से बन्द नहीं; अहि-इन्द्र—महान् सर्प अनन्त; तल्पे—शय्या में; अधिशयानः—लेटे हुए; एकः—एकाकी; कृत-क्षणः—व्यस्त; स्व-आत्म-रतौ—अपनी अन्तरंगा शक्ति का आनन्द लेते; निरीहः—बहिरंगा शक्ति के किसी अंश के बिना।

उस समय जब तीनों जगत जल में निमग्न थे तो गर्भोदकशायी विष्णु महान् सर्प अनन्त की अपनी शय्या में अकेले लेटे थे। यद्यपि वे अपनी निजी अन्तरंगा शक्ति में सोये हुए लग रहे थे और बहिरंगा शक्ति के प्रभाव से मुक्त थे, किन्तु उनकी आँखें पूर्णतया बन्द नहीं थीं।

तात्पर्य : भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा सतत दिव्य आनन्द लेते हैं, जबकि बहिरंगा शक्ति विराट जगत के प्रलय के समय निलम्बित कर दी जाती है।

सोऽन्तः शरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः  
कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः ।  
उवास तस्मिन्सलिले पदे स्वे  
यथानलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

सः—भगवान्; अन्तः—भीतर; शरीर—दिव्य शरीर में; अर्पित—रखा हुआ; भूत—भौतिक तत्त्व; सूक्ष्मः—सूक्ष्म; काल-आत्मिकाम्—काल का स्वरूप; शक्तिम्—शक्ति; उदीरयाणः—अर्जित करते हुए; उवास—निवास किया; तस्मिन्—उस में; सलिले—जल में; पदे—स्थान में; स्वे—निजी; यथा—जिस तरह; अनलः—अग्नि; दारुणि—लकड़ी में; रुद्ध-वीर्यः—लीन शक्ति।

जिस तरह ईंधन के भीतर अग्नि की शक्ति छिपी रहती है उसी तरह भगवान् समस्त जीवों को उनके सूक्ष्म शरीरों में लीन करते हुए प्रलय के जल के भीतर पड़े रहे। वे काल नामक स्वतः अर्जित शक्ति में लेटे हुए थे।

तात्पर्य : जब तीनों लोक—ऊर्ध्व, मध्य तथा अधोलोक—प्रलय के जल में निमग्न हो गये तो तीनों लोकों के जीव काल नामक शक्ति के द्वारा अपने सूक्ष्म शरीरों में पड़े रहे। इस प्रलय में स्थूल शरीर अप्रकट हो गये, किन्तु सूक्ष्म शरीर स्थित रहे जिस तरह भौतिक सृष्टि का जल पड़ा रहता है। इस तरह भौतिक शक्ति पूर्णतया निःशेष नहीं हुई जैसाकि भौतिक जगत के पूर्ण प्रलय में होता है।

चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु

स्वपन्स्वयोदीरितया स्वशक्त्या ।

कालाख्ययासादितकर्मतन्त्रो

लोकानपीतान्दृशे स्वदेहे ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

चतुः—चार; युगानाम्—युगों के; च—भी; सहस्रम्—एक हजार; अप्सु—जल में; स्वपन्—निद्रा में स्वप्न देखते हुए; स्वया—अपनी अन्तरंगा शक्ति के साथ; उदीरितया—आगे विकास के लिए; स्व-शक्त्या—अपनी निजी शक्ति से; काल-आख्यया—काल नाम से; आसादित—इस तरह व्यस्त रहते हुए; कर्म-तन्त्रः—सकाम कर्मों के मामले में; लोकान्—सारे जीवों को; अपीतान्—नीलाभ; दृशे—देखा; स्व-देहे—अपने ही शरीर में।

भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति में चार हजार युगचक्रों तक लेटे रहे और अपनी बहिरंगा शक्ति से जल के भीतर सोते हुए प्रतीत होते रहे। जब सारे जीव कालशक्ति द्वारा प्रेरित होकर अपने सकाम कर्मों के आगे के विकास के लिए बाहर आ रहे थे तो उन्होंने अपने दिव्य शरीर को नीले रंग का देखा।

तात्पर्य : विष्णुपुराण में कालशक्ति का उल्लेख अविद्या के रूप में हुआ है। कालशक्ति के प्रभाव का लक्षण यह है कि मनुष्य को सकाम फलों के लिए भौतिक जगत में कार्य करना होता है। भगवद्गीता में सकामकर्मियों को मूढ या मूर्ख कहा गया है। ऐसे मूर्ख जीव कुछ क्षणिक लाभ के लिए शाश्वत बन्धन के अन्तर्गत कार्य करने के लिए अत्यधिक उत्साहित रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने बाद अपने बच्चों के लिए प्रभूत सम्पत्ति छोड़ पाता है, तो वह अपने जीवन में अपने को अतीव चतुर



समझता है और इस क्षणिक लाभ को पाने के लिए वह सारे पापकर्मों का जोखिम उठाता है। उसे इसका ज्ञान नहीं रहता कि ऐसे कार्य उसे भवबन्धन की जंजीरों से हमेशा के लिए जकड़ कर रखेंगे। इस दूषित मनोवृत्ति तथा भौतिक पापों के कारण जीव कुल मिलाकर नीले रंग के प्रतीत होते हैं। सकाम फल के लिए कार्य करने की ऐसी प्रेरणा भगवान् की बहिरंगा शक्ति, काल, के आदेश द्वारा सम्भव हो पाती है।

तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेर्

अन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान् ।

गुणेन कालानुगतेन विद्धः

सूष्यंस्तदाभिद्यत नाभिदेशात् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; अर्थ—विषय; सूक्ष्म—सूक्ष्म; अभिनिविष्ट-दृष्टेः—जिसका ध्यान स्थिर किया गया था, उसका; अन्तः-गतः—आन्तरिक; अर्थः—प्रयोजन; रजसा—रजोगुण से; तनीयान्—अत्यन्त सूक्ष्म; गुणेन—गुणों के द्वारा; काल-अनुगतेन—कालक्रम में; विद्धः—क्षुब्ध किया गया; सूष्यन्—उत्पन्न करते हुए; तदा—तब; अभिद्यत—वेध दिया; नाभि-देशात्—उदर से।

सृष्टि का सूक्ष्म विषय-तत्त्व, जिस पर भगवान् का ध्यान टिका था, भौतिक रजोगुण द्वारा

विक्षुब्ध हुआ। इस तरह से सृष्टि का सूक्ष्म रूप उनके उदर ( नाभि ) से बाहर निकल आया।

स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्

कालेन कर्मप्रतिबोधनेन ।

स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं

विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; पद्म-कोशः—कमल के फूल की कली; सहसा—एकाएक; उदतिष्ठत्—प्रकट हुई; कालेन—काल के द्वारा; कर्म—सकाम कर्म; प्रतिबोधनेन—जगाते हुए; स्व-रोचिषा—अपने ही तेज से; तत्—वह; सलिलम्—प्रलय का जल; विशालम्—अपार; विद्योतयन्—प्रकाशित करते हुए; अर्कः—सूर्य; इव—सदृश; आत्म-योनिः—विष्णु से उत्पन्न।

जीवों के सकाम कर्म के इस समग्र रूप ने भगवान् विष्णु के शरीर से प्रस्फुटित होते हुए

कमल की कली का स्वरूप धारण कर लिया। फिर उनकी परम इच्छा से इसने सूर्य की तरह हर

वस्तु को आलोकित किया और प्रलय के अपार जल को सुखा डाला।

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः

प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ।

तस्मिन्स्वयं वेदमयो विधाता

स्वयम्भुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ॥ १५ ॥

### शब्दार्थ

तत्—उस; लोक—ब्रह्माण्ड के; पद्मम्—कमल को; सः—वह; उ—निश्चय ही; एव—वस्तुतः; विष्णुः—भगवान्; प्रावीविशत्—भीतर घुसा; सर्व—समस्त; गुण-अवभासम्—समस्त गुणों का आगार; तस्मिन्—जिसमें; स्वयम्—खुद; वेद-मयः—साक्षात् वैदिक; विधाता—ब्रह्माण्ड का नियंत्रक; स्वयम्-भुवम्—स्वतः उत्पन्न; यम्—जिसको; स्म—भूतकाल में; वदन्ति—कहते हैं; सः—वह; अभूत्—उत्पन्न हुआ।

उस ब्रह्माण्डमय कमल पुष्प के भीतर भगवान् विष्णु परमात्मा रूप में स्वयं प्रविष्ट हो गये और जब यह इस तरह भौतिक प्रकृति के समस्त गुणों से गर्भित हो गया तो साक्षात् वैदिक ज्ञान उत्पन्न हुआ जिसे हम स्वयंभुव ( ब्रह्मा ) कहते हैं।

तात्पर्य : यह कमल का फूल भौतिक जगत में ब्रह्माण्ड का विराट रूप है। प्रलय के समय यह भगवान् विष्णु के उदर में घुलमिल जाता है और सृष्टि के समय प्रकट होता है। यह गर्भोदकशायी विष्णु के कारण है, जो प्रत्येक ब्रह्माण्ड में प्रवेश करते हैं। इस रूप में भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध समस्त जीवों के सकाम कर्मों का सार-समाहार रहता है और इस कमल पुष्पा से सर्वप्रथम ब्रह्मा अर्थात् ब्रह्माण्ड का नियंत्रक उत्पन्न होता है। इस प्रथम उद्भूत जीव का कोई भौतिक पिता नहीं होता यद्यपि बाकी सभी के पिता होते हैं, अतएव वह स्वयम्भू कहलाता है। प्रलय के समय वह नारायण के साथ सो जाता है और जब दूसरी सृष्टि होती है, तो वह इसी तरह से उत्पन्न होता है। इस विवरण से हमें स्थूल विराट् रूप, सूक्ष्म हिरण्यगर्भ तथा भौतिक सृजन शक्ति ब्रह्मा—इन तीनों का बोध होता है।

तस्यां स चाम्भोरुहकर्णिकाया-

मवस्थितो लोकमपश्यमानः ।

परिक्रमन्व्योमि विवृत्तनेत्र-

श्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥ १६ ॥

### शब्दार्थ

तस्याम्—उसमें; सः—वे; च—तथा; अम्भः—जल; रुह-कर्णिकायाम्—कमल का कोश; अवस्थितः—स्थित हुआ; लोकम्—जगत; अपश्यमानः—देख पाये बिना; परिक्रमन्—परिक्रमा करते हुए; व्योमि—आकाश में; विवृत्त-नेत्रः—आँखें चलाते हुए; चत्वारि—चार; लेभे—प्राप्त किये; अनुदिशम्—दिशाओं के रूप में; मुखानि—सिर।

कमल के फूल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा जगत को नहीं देख सके यद्यपि वे कोश में स्थित थे। अतः उन्होंने सारे अन्तरिक्ष की परिक्रमा की और सभी दिशाओं में अपनी आँखें घुमाते समय उन्होंने चार दिशाओं के रूप में चार सिर प्राप्त किये।

तस्माद्युगान्तश्चसनावधूर्ण-  
जलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ।  
उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं  
नात्मानमद्धाविददादिदेवः ॥ १७ ॥

**शब्दार्थ**

तस्मात्—वहाँ से; युग-अन्त—युग के अन्त में; श्वसन—प्रलय की वायु; अवधूर्ण—गति के कारण; जल—जल; ऊर्मि-  
चक्रात्—भँवरों में से; सलिलात्—जल से; विरूढम्—उन पर स्थित; उपाश्रितः—आश्रय के रूप में; कञ्जम्—कमल के फूल  
को; उ—आश्चर्य में; लोक-तत्त्वम्—सृष्टि का रहस्य; न—नहीं; आत्मानम्—स्वयं को; अद्धा—पूर्णरूपेण; अविदत्—समझ  
सका; आदि-देवः—प्रथम देवता ।

उस कमल पर स्थित ब्रह्मा न तो सृष्टि को, न कमल को, न ही अपने आपको भलीभाँति  
समझ सके। युग के अन्त में प्रलय वायु जल तथा कमल को बड़ी-बड़ी भँवरों में हिलाने लगी।

तात्पर्य : ब्रह्माजी अपने जन्म, कमल तथा जगत् के विषय में भ्रान्ति में पड़े रहे, यद्यपि उन्होंने  
एक युग तक इन्हें समझने की कोशिश की जो मनुष्यों के सौर वर्षों की गणना के परे है। अतएव कोई  
भी व्यक्ति मात्र मानसिक चिन्तन द्वारा सृष्टि तथा विराट ब्रह्माण्ड के रहस्य को नहीं जान सकता। मनुष्य  
की क्षमता इतनी सीमित है कि परमेश्वर की सहायता के बिना वह सृजन, स्थिति तथा संहार के रूप में  
भगवान् की इच्छा के रहस्य को नहीं समझ सकता।

क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ  
एतत्कुतो वाब्जमनन्यदप्सु ।  
अस्ति ह्यधस्तादिह किञ्चनैत-  
दधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम् ॥ १८ ॥

**शब्दार्थ**

कः—कौन; एषः—यह; यः असौ अहम्—जो मैं हूँ; अब्ज-पृष्ठे—कमल के ऊपर; एतत्—यह; कुतः—कहाँ से; वा—अथवा;  
अब्जम्—कमल का फूल; अनन्यत्—अन्यथा; अप्सु—जल में; अस्ति—है; हि—निश्चय ही; अधस्तात्—नीचे से; इह—इस में;  
किञ्चन—कुछ भी; एतत्—यह; अधिष्ठितम्—स्थित; यत्र—जिसमें; सता—स्वतः; नु—या नहीं; भाव्यम्—होना चाहिए।

ब्रह्माजी ने अपनी अनभिज्ञता से विचार किया : इस कमल के ऊपर स्थित मैं कौन हूँ? यह  
( कमल ) कहाँ से फूटकर निकला है? इसके नीचे कुछ अवश्य होना चाहिए और जिससे यह  
कमल निकला है उसे जल के भीतर होना चाहिए।

तात्पर्य : प्रारम्भ में विराट जगत् की सृष्टि के विषय में ब्रह्मा के चिन्तन का विषय अब भी  
मानसिक चिन्तकों के लिए जैसे का तैसा बना हुआ है। सर्वाधिक बद्धिमान् व्यक्ति वह है, जो अपने

निजी अस्तित्व तथा सम्पूर्ण विराट जगत के कारण को ढूँढने का प्रयास करता है और इस तरह से वह परम कारण को खोजने का यत्न करता है। यदि तपस्या तथा अध्यवसाय के साथ उसका प्रयास उचित ढंग से सम्पन्न होता है, तो उसे अवश्यमेव सफलता का श्रेय प्राप्त होगा।

स इत्थमुद्धीक्ष्य तदब्जनाल-  
नाडीभिरन्तर्जलमाविवेश ।

नार्वाम्गतस्तत्खरनालनाल-  
नाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताजः ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

सः—वह ( ब्रह्मा ); इत्थम्—इस प्रकार से; उद्धीक्ष्य—विचार करके; तत्—वह; अब्ज—कमल; नाल—डंठल; नाडीभिः—नली द्वारा; अन्तः—जलम्—जल के भीतर; आविवेश—घुस गया; न—नहीं; अर्वाक्-गतः—भीतर जाने के बावजूद; तत्-खर-नाल—कमल-नाल; नाल—नली; नाभिम्—नाभि की; विचिन्वन्—सोचते हुए; तत्—वह; अविन्दत—समझ गया; अजः—स्वयंभुव ।

इस तरह विचार करते हुए ब्रह्माजी कमल नाल के रन्ध्रों ( छिद्रों ) से होकर जल के भीतर प्रविष्ट हुए। किन्तु नाल में प्रविष्ट होकर तथा विष्णु की नाभि के निकटतम जाकर भी वे जड़ ( मूल ) का पता नहीं लगा पाये।

तात्पर्य : मनुष्य अपने निजी प्रयास से भगवान् के पास तक जा सकता है, किन्तु भगवान् की कृपा के बिना वह चरम बिन्दु तक नहीं पहुँच सकता। भगवान् विषयक यह समझ एकमात्र भक्तियोग से सम्भव है जैसाकि भगवद्गीता (१८.५५) में पुष्टि हुई है— भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः ।

तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं  
विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणोमिः ।  
यो देहभाजां भयमीरयाणः  
परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥ २० ॥

#### शब्दार्थ

तमसि अपारे—ढूँढने के अज्ञानपूर्ण ढंग के कारण; विदुर—हे विदुर; आत्म-सर्गम्—अपनी सृष्टि का कारण; विचिन्वतः—सोचते हुए; अभूत्—हो गया; सु-महान्—अत्यन्त महान्; त्रि-नेमिः—त्रिनेमी का काल; यः—जो; देह-भाजाम्—देहधारी का; भयम्—भय; ईरयाणः—उत्पन्न करते हुए; परिक्षिणोति—एक सौ वर्ष कम करते हुए; आयुः—आयु; अजस्य—अजन्मा का; हेतिः—शाश्वत काल का चक्र ।

हे विदुर, अपने अस्तित्व के विषय में इस तरह खोज करते हुए ब्रह्मा अपने चरमकाल में

पहुँच गये, जो विष्णु के हाथों में शाश्वत चक्र है और जो जीव के मन में मृत्यु-भय की भ्रान्ति भय उत्पन्न करता है।

ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः  
स्वधिष्यमासाद्य पुनः स देवः ।  
शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो  
न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥ २१ ॥

#### शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; निवृत्तः—उस प्रयास से विरत होकर; अप्रतिलब्ध-कामः—वांछित लक्ष्य को प्राप्त किये बिना; स्व-धिष्यम्—अपने आसन पर; आसाद्य—पहुँच कर; पुनः—फिर; सः—वह; देवः—देवता; शनैः—अविलम्ब; जित-श्वास—श्वास को नियंत्रित करते हुए; निवृत्त—विरत; चित्तः—बुद्धि; न्यषीदत्—बैठ गया; आरूढ—विश्वास में; समाधि-योगः—भगवान् का ध्यान करने के लिए।

तत्पश्चात् वाँछित लक्ष्य प्राप्त करने में असमर्थ होकर वे ऐसी खोज से विमुख हो गये और पुनः कमल के ऊपर आ गये। इस तरह इन्द्रियविषयों को नियंत्रित करते हुए उन्होंने अपना मन परमेश्वर पर एकाग्र किया।

तात्पर्य : समाधि में सबों के परम कारण पर मन को एकाग्र करना होता है, चाहे मनुष्य को इसका ज्ञान हो या न हो कि परमेश्वर साकार हैं, निराकार हैं या अन्तर्यामी हैं। ब्रह्म में मन की एकाग्रता निश्चय ही एक प्रकार से भक्ति है। निजी इन्द्रियों के प्रयासों को रोकना और परम कारण पर चित्त को एकाग्र करना आत्मसमर्पण का लक्षण है और जब आत्मसमर्पण उपस्थित होता है, तो वह भक्ति का निश्चित लक्षण है। यदि अपने जीवन के चरम कारण को जानने की इच्छा है, तो प्रत्येक जीव को भगवान् की भक्तिमय सेवा में लगने की आवश्यकता है।

कालेन सोऽजः पुरुषायुषाभि-  
प्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ।  
स्वयं तदन्तर्हृदयेऽवभातम्  
अपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम् ॥ २२ ॥

#### शब्दार्थ

कालेन—कालक्रम में; सः—वह; अजः—स्वयंभुव ब्रह्मा; पुरुष-आयुषा—अपनी आयु से; अभिप्रवृत्त—लगा रहकर; योगेन—ध्यान में; विरूढ—विकसित; बोधः—बुद्धि; स्वयम्; स्वयम्—स्वतः; तत् अन्तः-हृदये—हृदय में; अवभातम्—प्रकट हुआ; अपश्यत—देखा; अपश्यत—देखा; यत्—जो; न—नहीं; पूर्वम्—इसके पहले।

अपने सौ वर्षों के बाद जब ब्रह्मा का ध्यान पूरा हुआ तो उन्होंने वाँछित ज्ञान विकसित किया

जिसके फलस्वरूप वे अपने ही भीतर अपने हृदय में परम पुरुष को देख सके जिन्हें वे इसके पूर्व महानतम् प्रयास करने पर भी नहीं देख सके थे।

तात्पर्य : भगवान् को भक्तियोग के द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है—मानसिक चिन्तन के निजी प्रयास द्वारा नहीं। ब्रह्मा की आयु की गणना दिव्य वर्षों के रूप में की जाती है, जो मनुष्यों के सौर वर्षों से भिन्न होते हैं। दिव्य वर्षों की गणना भगवद्गीता (८.१७) में दी गई है : सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्यद् ब्रह्मणो विदुः। ब्रह्मा का एक दिन चतुर्युगों के योग के एक हजार गुना के तुल्य (गणना के अनुसार ४३००००० वर्ष) होता है। इस आधार पर ब्रह्मा एक सौ वर्षों तक ध्यान करते रहे। पूर्व इस के कि वे समस्त कारणों के कारण को समझ पाये और तब उन्होंने ब्रह्म-संहिता लिखी जिसका श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा इस तथ्य का अनुमोदन किया गया है तथा इस तथ्य की मान्यता दी गई है। इसमें ब्रह्मा ने लिखा है— गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि। इसके पूर्व कि मनुष्य भगवान् की सेवा कर पाये या उन्हें यथारूप जान पाए, उसे भगवान् की कृपा की प्रतीक्षा करनी होती है।

मृणालगौरायतशेषभोग-

पर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ।

फणातपत्रायुतमूर्धरत्न

द्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

मृणाल—कमल का फूल; गौर—पूरी तरह सफेद; आयत—विराट; शेष-भोग—शेषनाग का शरीर; पर्यङ्क—शय्या पर; एकम्—अकेले; पुरुषम्—परम पुरुष; शयानम्—लेटे हुए; फण-आतपत्र—सर्प के फन का छाता; आयुत—सज्जित; मूर्ध—सिर; रत्न—रत्न की; द्युभिः—किरणों से; हत-ध्वान्त—अंधेरा दूर हो गया; युग-अन्त—प्रलय; तोये—जल में।

ब्रह्मा यह देख सके कि जल में शेषनाग का शरीर विशाल कमल जैसी श्वेत शय्या था जिस पर भगवान् अकेले लेटे थे। सारा वायुमण्डल शेषनाग के फन को विभूषित करने वाले रत्नों की किरणों से प्रदीप्त था और इस प्रकाश से उस क्षेत्र का समस्त अंधकार मिट गया था।

प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रेः

सन्ध्याभ्रनीवेरुरुक्ममूर्धः ।

रत्नोदधारौषधिसौमनस्य

वनस्रजो वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

प्रेक्षाम्—दृश्य; क्षिपन्तम्—उपहास करते हुए; हरित—हरा; उपल—मूँगे के; अद्रेः—पर्वत का; सन्ध्या-अभ्र-नीवेः—  
सांध्यकालीन आकाश का वस्त्र; ऊरु—महान्; रुक्म—स्वर्ण; मूर्ध्नः—शिखर पर; रत्न—रत्न; उदधार—झरने; औषधि—जड़ी-  
बूटियाँ; सौमनस्य—दृश्य का; वन-स्रजः—फूल की माला; वेणु—वस्त्र; भुज—हाथ; अङ्घ्रिप—वृक्ष; अङ्घ्रेः—पाँव।

भगवान् के दिव्य शरीर की कान्ति मूँगे के पर्वत की शोभा का उपहास कर रही थी। मूँगे का पर्वत संध्याकालीन आकाश द्वारा सुन्दर ढंग से वस्त्राभूषित होता है, किन्तु भगवान् का पीतवस्त्र उसकी शोभा का उपहास कर रहा था। इस पर्वत की चोटी पर स्वर्ण है, किन्तु रत्नजटित भगवान् का मुकुट इसकी हँसी उड़ा रहा था। पर्वत के झरने, जड़ी-बूटियाँ आदि फूलों के दृश्य के साथ मालाओं जैसे लगते हैं, किन्तु भगवान् का विराट शरीर तथा उनके हाथ-पाँव रत्नों, मोतियों, तुलसीदल तथा फूलमालाओं से अलंकृत होकर उस पर्वत के दृश्य का उपहास कर रहे थे।

तात्पर्य : प्रकृति का दृश्यात्मक सौन्दर्य जो सबों को चकित करता है भगवान् के दिव्य शरीर का विकृत प्रतिबिम्ब माना जा सकता है। अतः जो व्यक्ति भगवान् के सौन्दर्य द्वारा आकृष्ट होता है, वह भौतिक प्रकृति के सौन्दर्य से आकृष्ट नहीं होता, यद्यपि वह इस सौन्दर्य को कम नहीं समझता। भगवद्गीता (२.५९) में वर्णन आया है कि जो परम द्वारा आकृष्ट है, वह अन्य किसी निकृष्ट वस्तु द्वारा आकृष्ट नहीं होता।

आयामतो विस्तरतः स्वमान-

देहेन लोकत्रयसङ्ग्रहेण ।

विचित्रदिव्याभरणांशुकानां

कृतश्रियापाश्रितवेषदेहम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

आयामतः—लम्बाई से; विस्तरतः—चौड़ाई से; स्व-मान—अपने ही माप से; देहेन—दिव्य शरीर से; लोक-त्रय—तीन ( उच्चतर, मध्य तथा निम्न ) लोक; सङ्ग्रहेण—पूर्ण निमग्नता द्वारा; विचित्र—नाना प्रकार का; दिव्य—दिव्य; आभरण-  
अंशुकानाम्—आभूषणों की किरणों से; कृत-श्रिया अपाश्रित—उन वस्त्रों तथा आभूषणों से उत्पन्न सौन्दर्य; वेष—वेश;  
देहम्—दिव्य शरीर।

उनके दिव्य शरीर की लम्बाई तथा चौड़ाई असीम थी और वह तीनों लोकों—उच्च, मध्य तथा निम्न—लोकों में फैली हुई थी। उनका शरीर अद्वितीय वेश तथा विविधता से स्वतःप्रकाशित था और भलीभाँति अलंकृत था।

तात्पर्य : भगवान् के दिव्य शरीर की लम्बाई तथा चौड़ाई उन्हीं के प्रमाप से मापी जा सकती है,

क्योंकि वे सम्पूर्ण विराट जगत में सर्वव्याप्त हैं। भौतिक प्रकृति की सुन्दरता उनकी निजी सुन्दरता के कारण है फिर भी वे अपनी दिव्य विविधता को सिद्ध करने के लिए सदा भव्यवेश धारण करते हैं और अलंकृत रहते हैं, जो आध्यात्मिक ज्ञान की प्रगति के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गै-  
 रभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मम् ।  
 प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दु-  
 मयूखभिन्नाङ्गुलिचारुपत्रम् ॥ २६ ॥

#### शब्दार्थ

पुंसाम्—मनुष्यों का; स्व-कामाय—अपनी इच्छा के अनुसार; विविक्त-मार्गैः—शक्ति मार्ग द्वारा; अभ्यर्चताम्—पूजित; काम-दुघ-अङ्घ्रि-पद्मम्—भगवान् के चरणकमल जो मनवांछित फल देने वाले हैं; प्रदर्शयन्तम्—उन्हें दिखलाते हुए; कृपया—अहैतुकी कृपा द्वारा; नख—नाखून; इन्दु—चन्द्रमा सदृश; मयूख—किरणों; भिन्न—विभाजित; अङ्गुलि—अँगुलियाँ; चारु-पत्रम्—अतीव सुन्दर।

भगवान् ने अपने चरणकमलों को उठाकर दिखलाया। उनके चरणकमल समस्त भौतिक कल्मष से रहित भक्ति-मय सेवा द्वारा प्राप्त होने वाले समस्त वरों के स्रोत हैं। ऐसे वर उन लोगों के लिए होते हैं, जो उनकी पूजा शुद्ध भक्तिभाव में करते हैं। उनके पाँव तथा हाथ के चन्द्रमा सदृश नाखूनों से निकलने वाली दिव्य किरणों की प्रभा ( छटा ) फूल की पंखुड़ियों जैसी प्रतीत हो रही थी।

तात्पर्य : भगवान् हर एक की इच्छाओं की पूर्ति उसकी इच्छानुसार करते हैं। शुद्ध भक्तजन भगवान् की दिव्य सेवा प्राप्त करने में रुचि रखते हैं, जो उनसे अभिन्न होती है। अतएव भगवान् ही शुद्ध भक्तों की एकमात्र इच्छा हैं और भक्ति उनकी कृपा प्राप्त करने की एकमात्र निष्कलुष विधि है। भक्तिरसामृत सिन्धु (१.१.११) में श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि शुद्ध भक्ति ज्ञानकर्माद्यनावृतम् है—शुद्ध भक्ति में ज्ञान तथा सकाम कर्म का लेश भी नहीं रहता। ऐसी भक्ति शुद्ध भक्त को उच्चतम फल अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का प्रत्यक्ष सान्निध्य दिलाने में समर्थ है। गोपालतापनी उपनिषद् के अनुसार भगवान् ने अपने चरणकमल की कई हजार पंखुड़ियों में से एक का दर्शन कराया। कहा गया है ब्राह्मणोऽसावनवरतं मे ध्यातः स्तुतःपरार्धान्ते सोऽबुध्यत गोपवेशो मे पुरस्तात् आविर्बभूव। लाखों वर्षों तक तपस्या करते रहने पर ब्रह्माजी गोपबाल वेशधारी श्रीकृष्ण के रूप में भगवान् के दिव्य स्वरूप को समझ पाये। इस तरह उन्होंने अपने अनुभवों को ब्रह्म-संहिता में सुप्रसिद्ध स्तुति गोविन्दमादिपुरुषं



तमहं भजामि में अंकित किया है।

मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन  
परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन ।  
शोणायितेनाधरबिम्बभासा  
प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुप्वा ॥ २७ ॥

#### शब्दार्थ

मुखेन—मुख के संकेत से; लोक-आर्ति-हर—भक्तों के कष्ट को हरनेवाले; स्मितेन—हँसी के द्वारा; परिस्फुरत्—चकाचौंध करते; कुण्डल—कुण्डल से; मण्डितेन—सुसज्जित; शोणायितेन—स्वीकार करते हुए; अधर—अपने होठों का; बिम्ब—प्रतिबिम्ब; भासा—किरणों; प्रत्यर्हयन्तम्—आदान-प्रदान करते हुए; सु-नसेन—अपनी मनोहर नाक से; सु-प्वा—तथा मनोहर भौहों से।

उन्होंने भक्तों की सेवा भी स्वीकार की और अपनी सुन्दर हँसी से उनका कष्ट मिटा दिया। कुण्डलों से सज्जित उनके मुख का प्रतिबिम्ब अत्यन्त मनोहारी था, क्योंकि यह उनके होठों की किरणों तथा उनकी नाक एवं भौहों की सुन्दरता से जगमगा रहा था।

तात्पर्य : भगवान् अपनी भक्ति से अत्यधिक अनुग्रहीत होते हैं। आध्यात्मिक कार्यकलापों के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक अध्यात्मवादी हैं, किन्तु भगवान् की भक्ति-मय सेवा अद्वितीय होती है। भक्तजन अपनी सेवा के बदले में भगवान् से कुछ भी नहीं माँगते। यहाँ तक कि भगवान् के द्वारा प्रदान की जाने वाली सर्वाधिक इच्छित मुक्ति से भी वे इनकार कर देते हैं। इस तरह भगवान् एक प्रकार से भक्तों के ऋणी बन जाते हैं और वे अपनी सदा मोहक मुसकान से ही भक्तों की सेवा से उन्नत होने का प्रयास कर सकते हैं। भक्तजन भगवान् के हँसमुख मुद्रा से सदा तुष्ट रहते हैं और जीवंत होते रहते हैं। भक्तों को इस तरह जीवंत देखकर भगवान् और अधिक तुष्ट होते हैं। इस तरह सेवा तथा स्वीकृति के ऐसे आदान-प्रदान से भगवान् तथा भक्तों के बीच सतत एक दिव्य स्पर्धा चलती जाती है।

कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससा  
स्वलङ्कृतं मेखलया नितम्बे ।  
हारेण चानन्तधनेन वत्स  
श्रीवत्सवक्षःस्थलवल्लभेन ॥ २८ ॥

#### शब्दार्थ

कदम्ब-किञ्जल्क—कदम्ब फूल की केसरिया धूल; पिशङ्ग—रंगीन परिधान; वाससा—वस्त्रों से; सु-अलङ्कृतम्—अच्छी तरह सुसज्जित; मेखलया—करधनी से; नितम्बे—कमर पर; हारेण—हार से; च—भी; अनन्त—अत्यन्त; धनेन—मूल्यवान्; वत्स—हे विदुर; श्रीवत्स—दिव्य चिह्न का; वक्षः-स्थल—छाती पर; वल्लभेन—अत्यन्त मनोहर।

हे विदुर, भगवान् की कमर पीले वस्त्र से ढकी थी जो कदम्ब फूल के केसरिया धूल जैसा प्रतीत हो रहा था और इसको अतीव सज्जित करधनी घेरे हुए थी। उनकी छाती श्रीवत्स चिन्ह से तथा असीम मूल्य वाले हार से शोभित थी।

परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेक-

पर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशाखम् ।

अव्यक्तमूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्र-

महीन्द्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥ २९ ॥

#### शब्दार्थ

परार्ध्य—अत्यन्त मूल्यवान्; केयूर—आभूषण; मणि-प्रवेक—अत्यन्त मूल्यवान् मणि; पर्यस्त—फैलाते हुए; दोर्दण्ड—भुजाएँ; सहस्र-शाखम्—हजारों शाखाओं से युक्त; अव्यक्त-मूलम्—आत्मस्थित; भुवन—विश्व; अङ्घ्रिपेन्द्र—वृक्ष; इन्द्रम्—स्वामी; अहि-इन्द्र—अनन्तदेव; भोगैः—फनों से; अधिवीत—घिरा; वल्शम्—कंधा।

जिस तरह चन्दन वृक्ष सुगन्धित फूलों तथा शाखाओं से सुशोभित रहता है उसी तरह भगवान् का शरीर मूल्यवान् मणियों तथा मोतियों से अलंकृत था। वे आत्म-स्थित (अव्यक्त मूल) वृक्ष और विश्व के अन्य सभी के स्वामी थे। जिस तरह चन्दन वृक्ष अनेक सर्पों से आच्छादित रहता है उसी तरह भगवान् का शरीर भी अनन्त के फनों से ढका था।

तात्पर्य : यहाँ पर अव्यक्त-मूलम् शब्द महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतया कोई भी व्यक्ति वृक्ष की जड़ें नहीं देख सकता। किन्तु जहाँ तक भगवान् का सम्बन्ध है वे स्वयं अपनी जड़ (मूल) हैं, क्योंकि उनके (चिरंतन) बने रहने का उनके अतिरिक्त कोई और पृथक् कारण नहीं है। वेदों में कहा गया है कि भगवान् स्वाश्रयाश्रय हैं। वे अपने निजी आश्रय हैं और उनका कोई अन्य आश्रय नहीं है। अतएव अव्यक्त का अर्थ स्वयं भगवान् और उन के अतिरिक्त और कोई नहीं है।

चराचरौको भगवन्महीध-

महीन्द्रबन्धुं सलिलोपगूढम् ।

किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्ग-

माविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥ ३० ॥

#### शब्दार्थ

चर—गतिशील पशु; अचर—स्थिर वृक्ष; ओकः—स्थान या स्थिति; भगवत्—भगवान्; महीधम्—पर्वत; अहि-इन्द्र—श्री अनन्तदेव; बन्धुम्—मित्र; सलिल—जल; उपगूढम्—निमग्न; किरीट—मुकुट; साहस्र—हजारों; हिरण्य—स्वर्ण; शृङ्गम्—चोटियाँ; आविर्भवत्—प्रकट किया; कौस्तुभ—कौस्तुभ मणि; रत्न-गर्भम्—समुद्र।

विशाल पर्वत की भाँति भगवान् समस्त जड़ तथा चेतन जीवों के लिए आवास की तरह खड़े हैं। वे सर्पों के मित्र हैं, क्योंकि अनन्त देव उनके मित्र हैं। जिस तरह पर्वत में हजारों सुनहरी चोटियाँ होती हैं उसी तरह अनन्त नाग के सुनहरे मुकुटों वाले हजारों फनों से युक्त भगवान् दीख रहे थे। जिस तरह पर्वत कभी-कभी रत्नों से पूरित रहता है उसी तरह उनका शरीर मूल्यवान रत्नों से पूर्णतया सुशोभित था। जिस तरह कभी-कभी पर्वत समुद्र जल में डूबा रहता है उसी तरह भगवान् कभी-कभी प्रलय-जल में डूबे रहते हैं।

निवीतमाप्नायमधुव्रतश्रिया

स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ।

सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः

परिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरासदम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

निवीतम्—इस प्रकार घिरा; आप्नाय—वैदिक ज्ञान; मधु-व्रत-श्रिया—सौन्दर्य में मधुर ध्वनि; स्व-कीर्ति-मय्या—अपनी ही महिमा से; वन-मालया—फूल की माला से; हरिम्—भगवान् को; सूर्य—सूरज; इन्दु—चन्द्रमा; वायु—वायु; अग्नि—आग; अगमम्—न पहुँचने योग्य दुर्गम; त्रि-धामभिः—तीनों लोकों द्वारा; परिक्रमत्—परिक्रमा करते हुए; प्राधनिकैः—युद्ध के लिए; दुरासदम्—पहुँचने के लिए कठिन।

इस तरह पर्वताकार भगवान् पर दृष्टि डालते हुए ब्रह्मा ने यह निष्कर्ष निकाला कि वे भगवान् हरि ही हैं। उन्होंने देखा कि उनके वक्षस्थल पर पड़ी फूलों की माला वैदिक ज्ञान के मधुर गीतों से उनका महिमागान कर रही थी और अतीव सुन्दर लग रही थी। वे युद्ध के लिए सुदर्शन चक्र द्वारा सुरक्षित थे और सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि इत्यादि तक उनके पास फटक नहीं सकते थे।

तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोजम्

आत्मानमम्भः श्वसनं वियच्च ।

ददर्श देवो जगतो विधाता

नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तर्हि—अतः; एव—निश्चय ही; तत्—उसकी; नाभि—नाभि; सरः—झील; सरोजम्—कमल का फूल; आत्मानम्—ब्रह्मा; अम्भः—प्रलय का जल; श्वसनम्—सुखाने वाली वायु; वियत्—आकाश; च—भी; ददर्श—देखा; देवः—देवता; जगतः—ब्रह्माण्ड का; विधाता—भाग्य का निर्माता; न—नहीं; अतः परम्—परे; लोक-विसर्ग—विराट जगत की सृष्टि; दृष्टिः—चितवन।

जब ब्रह्माण्ड के भाग्य विधाता ब्रह्मा ने भगवान् को इस प्रकार देखा तो उसी समय उन्होंने

सृष्टि पर नजर दौड़ाई। ब्रह्मा ने विष्णु की नाभि में झील ( नाभि सरोवर ) तथा कमल देखा और उसी के साथ प्रलयकारी जल, सुखाने वाली वायु तथा आकाश को भी देखा। सब कुछ उन्हें दृष्टिगोचर हो गया।

स कर्मबीजं रजसोपरक्तः

प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ।

अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्य-

मव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥ ३३ ॥

#### शब्दार्थ

सः—वह ( ब्रह्मा ); कर्म-बीजम्—सांसारिक कार्यों का बीज; रजसा उपरक्तः—रजोगुण द्वारा प्रेरित; प्रजाः—जीव; सिसृक्षन्—सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा से; इयत्—सृष्टि के सभी पाँचों कारण; एव—इस तरह; दृष्ट्वा—देखकर; अस्तौत्—स्तुति की; विसर्ग—भगवान् द्वारा सृष्टि के पश्चात् सृष्टि; अभिमुखः—की ओर; तम्—उसको; ईड्यम्—पूजनीय; अव्यक्त—दिव्य; वर्त्मनि—के मार्ग पर; अभिवेशित—स्थिर; आत्मा—मन।

इस तरह रजोगुण से प्रेरित ब्रह्मा सृजन करने के लिए उन्मुख हुए और भगवान् द्वारा सुझाये गये सृष्टि के पाँच कारणों को देखकर वे सृजनशील मनोवृत्ति के मार्ग पर सादर स्तुति करने लगे।

तात्पर्य : रजोगुण में होते हुए भी इस संसार में किसी वस्तु का सृजन करने के लिए आवश्यक शक्ति हेतु परमेश्वर की शरण ग्रहण करनी पड़ती है। किसी प्रयास के सफल समापन का यही मार्ग है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध के अन्तर्गत “गर्भोदकशायी विष्णु से ब्रह्मा का प्राकट्य” नामक आठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।